प्राक्कथन

1. प्रस्तुत पुस्तक का आधार परम्परागत प्रामाणिक ग्रन्थ – ''भारतीय संस्कृति'' शब्द से हमारा तात्पर्य वैदिक संस्कृति, सनातन धर्म, या हिन्दू धर्म से है। ''भारतीय संस्कृति'' या ''हिन्दू धर्म'' के नाम से लिखी गयी आधुनिक काल में अनेक पुस्तकें हैं, किन्तु विचार हुआ क्यों न परम्परागतरूप से चले आ रहे प्रामाणिक ग्रन्थों का स्वयं ही अवलोकन करने का प्रयत्न किया जाय। इस हेतु दर्शनशास्त्र, श्रीमद्भागवत पुराण, गीता (श्रीमद्भगवद्गीता), उपनिषद् (शांकरभाष्य) एवं अन्य भाष्य आदि के हिन्दी भाषा में अनुवाद पढ़ने का प्रयास हुआ। पिछले लगभग पचहत्तर (75) वर्षों से अनवरत रूप से हमारे पास आ रहे गीता-प्रेस गोरखपुर के ''कल्याण'' मासिक पत्रिका के अंकों ने तथा अन्य ग्रन्थों ने भी हमारे ज्ञानवर्धन (अज्ञान निवारण) में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसके अतिरिक्त संन्यास आश्रमों में कई बार जाकर तथा वहाँ रहकर प्रस्थानत्रयी (गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र) पर महात्माओं के प्रवचन सुने और अपनी शंकाओं का समाधान पाने का प्रयत्न किया। इसलिये इस पुस्तक में विभिन्न स्थलों पर प्रामाणिक पुस्तकों के मन्त्रों, सूत्रों एवं श्लोकों को इंगित या उद्धरित किया गया है तथा उन संतों, महात्माओं एवं विद्वानों द्वारा प्रस्तुत भाष्यों या वचनों को भी इंगित किया गया है जिन्होनें अपना समस्त जीवन भारतीय संस्कृति के उत्थान के लिये अर्पित किया। इन्हीं प्रामाणिक ग्रन्थों एवं उनकी टीकाओं तथा व्याख्याओं का आधार पाकर भगवद्कृपा से प्रस्तुत पुस्तक की संरचना की गयी है।

2. परम्परागत प्रामाणिक ग्रन्थों की विशेषता – प्रामाणिक ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण इस पुस्तक के अन्त में प्रथम परिशिष्ट में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संस्कृति के प्रामाणिक शास्त्र निश्चयात्मक बुद्धि से प्रस्तुत किये गये हैं, संशयात्मक बुद्धि से नहीं, क्योंकि उनमें कहीं भी ''संम्भवतः'' (शायद) शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। आधुनिक विद्याओं के प्रामाणिक (Standard) ग्रन्थों में ''संम्भवतः'' (Probably, May be) शब्द का प्रयोग प्रायः देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति के परम्परागत पुरातन ग्रन्थों में केवल उन्हीं बातों पर लिखा गया है जो प्रामाणिक हैं और इसके लिये प्रमाणों (यथार्थ ज्ञान के साधनों) को परिभाषित किया है तथा उनका वर्गीकरण किया है। प्रमाणों एवं तर्कों की सीमाओं को भी समझा गया है तथा मानवीय बुद्धि के दोषों और सीमाओं को भी परखा गया है। प्रकृति में व्याप्त कारण-कार्य नियम में स्थित ''कारणों'' का भी वर्गीकरण किया गया है तथा कारण-कार्य श्रंखला के आदि और अन्त का भी निर्धारण हुआ है। यह सब यहाँ हमने इसलिये लिखा क्योंकि आजकल साइंस (विज्ञान) या अन्य भौतिक विषयों के विद्यार्थी यह प्रश्न तो करते रहते हैं कि अमुक बात का प्रमाण (Proof) क्या है? परन्तु उन विद्यार्थियों से यदि पूँछा जाय कि पहले वह यह बताएँ कि ''प्रमाण'' किसे कहते हैं, इसकी परिभाषा क्या है तथा प्रमाण कितने प्रकार के होते हैं? तो वे इन प्रश्नों के उत्तरों से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। प्रमाणों और तर्कों की सीमाओं आदि का बता पाना उनके लिए और भी दूभर है। परन्तु यह विद्यार्थियों का भी दोष नहीं है क्योंकि यह सब उनके पाठ्यक्रमों में होता ही नहीं। यह आधुनिक शिक्षा की एक दयनीय स्थिति का उदाहरण है। प्रमाणों के ज्ञान-विज्ञान से अनभिज्ञ रहने के कारण यदि आधुनिक काल में कुतर्कों का साम्राज्य बढ़ता जाए और उनकी परिणति दुःखदायी परिणामों में होने लगे तो इसमें आश्चर्य किसी को नहीं होना चाहिए।

3. पुस्तक का विषय सांस्कृतिक ज्ञान-विज्ञान है, इतिहास नहीं – आधुनिक काल में जिस प्रकार किसी देश या समाज के इतिहास पर पुस्तकें लिखी जाती हैं, उस प्रकार यह पुस्तक भारतीय संस्कृति के इतिहास की चर्चा नहीं करती। आधुनिक विश्व में भारतीय संस्कृति का पुरातन प्रसार भी विद्यमान है। यह प्रसार विश्व में कहाँ-कहाँ, कब-कब और कैसे-कैसे हुआ, उन्हें भी इस पुस्तक का विषय नहीं बनाया गया है। भारतीय संस्कृति का इतिहास स्वयं में एक

विशाल भण्डार है। यद्यपि भारत की भौतिक समृद्धि (भौतिक वैभव, निर्माण, कला आदि) की महानता व विलक्षणता का इतिहास हमारे लिये गौणरूप से महत्वपूर्ण है परन्तु विषयों का बहुत अधिक विस्तार हो जाने के कारण उन चर्चाओं को इस पुस्तक में नहीं रक्खा गया। विस्तार की अधिकता के कारण ही भारतीय संस्कृति में प्रस्तावित कर्मकाण्ड (विभिन्न यज्ञों एवं पूजा-विधियों) की भी कोई विशेष चर्चा नहीं की गयी है। प्रस्तुत पुस्तक में मनुष्य को अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति कराने वाले मौलिक विचार हैं अर्थात् वह ज्ञान-विज्ञान है जिसके आश्रय से मनुष्य सुखी शिष्ट लौकिक जीवन व्यतीत करता हुआ जीवन का सर्वोत्तम कल्याणकारी शिखर प्राप्त करे।

आधुनिक उच्च-शिक्षा संस्थानों में Indology (भारतीय संस्कृति का इतिहास) विषय पढ़ाया जाता है। यह मूलतः राजाओं तथा उनके वंशजों और महलों का इतिहास होता है। यह शुष्क (नीरस) इतिहास है, अधिक उपादेय नहीं है, भारतीय परम्परा का अनुसरण नहीं करता । इस इतिहास के अन्तर्गत जो सांस्कृतिक ज्ञान-विज्ञान की बृहद् एवं सूक्ष्म धारा बह रही है उसकी उपेक्षा कर दी जाती है, उसे महत्व नहीं दिया जाता। इस ज्ञान-विज्ञान में ही विद्यार्थियों एवं व्यक्तियों के चरित्र को उज्वल बनाने तथा सामाजिक समस्याओं को यथार्थ रूप से सुलझाने का सामर्थ्य है। प्रस्तुत पुस्तक Indology विषय की इस न्यूनता को पूर्ण करती है। भारतीय संस्कृति के परम्परागत ऐतिहासिक ग्रन्थों में वह सभी ज्ञान-विज्ञान समाविष्ट रहता है जो मानव-जीवन के लक्ष्य एवं परमलक्ष्य तक पहुँचाने में सार्थक हो। उदाहरण के लिये भारत के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों का अवलोकन कर लीजिए - रामायण और महाभारत। इन दोनों ही ऐतिहासिक ग्रन्थों में भारतीय सांस्कृतिक ज्ञान-विज्ञान कूट-कूट कर भरा पड़ा है। भारतीय संस्कृति की परम्परा में वही क्रियाकलाप सार्थक समझे जाते हैं जो मनुष्य को उसके ध्येय एवं परमध्येय (पुरुषार्थ चतुष्टय) के पदार्थों की प्राप्ति में सहायक हों।

4. पुस्तक का प्रारम्भिक ''बीज'' – हिन्दू ब्राह्मण परिवार में मेरा जन्म हुआ, भारतीय संस्कृति के परिवेश में मेरा पालन-पोषण हुआ, कुछ सत्संग मिला तथा गीता, रामायण आदि पर प्रवचन भी कुछ सुना। श्रीराम व श्रीकृष्ण लीलाएँ भी देखीं। परन्तु अन्ततोगत्वा संतोष नहीं हुआ तथा इसकी प्रतीति बनी रही कि मैं भारतीय संस्कृति को ठीक प्रकार सें नहीं जानता, केवल कुछ फुटकर बातें ही जान कर रह गया हूँ। ठीक से जानने तथा भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिये मेरी नौकरी की व्यस्तता बाधक थी। मैं आई.आई.टी. (इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलोजी अर्थात् भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान) बम्बई (मुम्बई) के एयरोस्पेस इन्जीनियरिंग (वायुआकाश अभियांत्रिकी) विभाग में प्रोफेसर के पद से जनवरी 1995 में सेवानिवृत्त हुआ। शीघ्र ही विदेश में पढ़ाने के लिये प्रोफेसर पद की नौकरी भी मिल गयी और जाने के लिये वीसा भी बन गया। परन्तु हरि इच्छा कुछ दूसरी ही थी। अपरिग्रह ने अपना प्रभाव दिखाया, विदेश जाने की इच्छा न्यून हुई, अध्ययन और अन्वेषण का विषय बदला। हमारे पठन-पाठन का विषय हो गया ''भारतीय संस्कृति''। हमारी इच्छा थी कि भारतीय संस्कृति को उसकी पूर्णता के साथ (अर्थात् भारतीय संस्कृति क्या-क्या है) समझने का प्रयत्न करूँ जिससे यदि कोई भारतीय सांस्कृतिक प्रवचन का श्रवण करूँ या पुस्तक पढ़ूँ तो कम-से-कम मोटे तौर पर कह सकूँ कि वह (प्रवचन कर्ता या लेखक) भारतीय संस्कृति के ज्ञानरूपी नक्शे (Map) के अमुक बिन्दु पर चर्चा कर रहे हैं। किसी विषय को अपनी पूर्णता के साथ समझने में संतोष भी अधिक होता है। यही भाव तथा इसके लिये प्रयत्न इस पुस्तक का ''बीज'' बना। इस बीज को पल्लवित किया सहायक ग्रन्थों ने। मुख्यसहायक ग्रन्थों की सूची इस पुस्तक के अन्त में चतुर्थ परिशिष्ट में दी गयी है और यह सभी ग्रंथ सौभाग्यवश हमारे पास हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हमने इन सभी ग्रन्थों का पूर्णरूप से अवलोकन किया है। भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित अन्य और भी इनसे कई गुना अधिक पुस्तकें हमारे पास हैं किन्तु उन सभी की सूची प्रस्तुत करने का कोई औचित्य नहीं। यदि यह पुस्तकें हमारे पास न होतीं तो इस पुस्तक के निर्माण की संभावना क्षीण थी। यह भगवान की कृपा ही थी कि धीरे-धीरे यह सभी पुस्तकें हमारे पास

विभिन्न कारणों से एकत्रित होती रहीं और हम भी अपनी शंकाओं के निवारण के लिये यदाकदा संत–महात्माओं के आश्रमों में जाते रहे तथा संतों के प्रवचनों को सुना और अपनी शंकाओं के निवारण का प्रयत्न किया। हम विशेषकर ''साधना–सदन'' (कनखल, हरिद्वार) आश्रम के आभारी हैं जहाँ स्वामी विश्वात्मानंद पुरी जी महाराज (अध्यक्ष) के सान्निध्य में ''ज्ञान–यज्ञ'' के अन्तर्गत प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता) पर संतों एवं महात्माओं द्वारा दिये गये प्रवचनों का श्रवण किया तथा वेदान्त सम्बन्धी अपनी शंकाओं के निवारण का प्रयत्न किया। परन्तु इस बात का सदैव ध्यान हम सब को रखना चाहिए कि भारतीय संस्कृति में पुस्तकों तथा उनके अध्ययन की अपेक्षा सदाचरण एवं साधना का अधिक महत्व है। अध्ययन केवल साधन का अंग है, अनुभव होना साध्य है, सदाचरण साध्य है।

5. भारतीय संस्कृति विषय का पढ़ाया जाना तथा इसी हेतु यह पुस्तक – भारतीय संस्कृति को पढ़ने और उसके द्वारा बतायी गई विधियों का पालन करने से अभ्युदय एवं निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति होती है। भारतीय संस्कृति पढ़ने, समझने और पढ़ाने के कारणों पर इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में विस्तृत चर्चा की गयी है। भारतीय संस्कृति द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत एवं कार्यशैली परंपरागत रूप से विद्वानों को मान्य रही है, जनमानस में अच्छे चरित्र का संचार करती है, सात्विक सुख प्रदान करती है तथा अखण्ड आनंद का व्यावहारिक मार्ग बताती है। भारतीय संस्कृति के निर्णयों में प्रमाणों एवं तर्कों को समुचित स्थान प्राप्त है । हम प्रायः अपने को जगद्गुरु होने की बात करते हैं परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि इसके कारणों को स्पष्ट रूप से जाने तथा भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को पहचानें। निकट भविष्य में प्रश्न उठेंगे कि विश्व में कौन सी संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है? कौन सी भाषा सर्वोपरि है? इत्यादि। इन प्रश्नों के उत्तरों का हमें समुचित ज्ञान होना चाहिए। अतः यह स्पष्ट है कि ''भारतीय संस्कृति'' विषय कुशल एवं परिपक्व विद्यार्थियों को पढ़ाया जाना चाहिए। जिस भारत देश में प्रातःकाल उठने से लेकर रात्रि के शयन करने तक के विविध कार्यक्रमों का शास्त्रीय विधि–विधान था और वह सभी कार्यक्रम सांस्कृतिक कार्यक्रम थे जिसके अन्तर्गत यम–नियम, ध्यान, प्राणायाम, योग, आदि महत्वपूर्ण साधनाएँ भी थीं, आज उसी भारत में केवल नाच–गानों के कार्यक्रमों को ही ''सांस्कृतिक कार्यक्रम'' कहने की प्रथा चल पड़ी है। यह परिवर्तन चिन्तनीय है, निन्दनीय है और इसके दुष्परिणाम भी समाज के सामने स्पष्ट हैं। इसलिये आधुनिक परिवेश में भारतीय संस्कृति का पढ़ाया जाना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

''भारतीय संस्कृति'' विषय के पढ़ाए जाने के उद्देश्य की पूर्ति के लिये आई.आई.टी. (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान) मुम्बई के पदाधिकारियों से निवेदन किया गया। सौभाग्य से यह निवेदन स्वीकार हुआ और ''भारतीय संस्कृति'' विषय दो भिन्न रूपों में ''मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग'' (Department of Humanities and Social Sciences) के अन्तर्गत पढ़ाया जाने लगा– एक B. Tech. (अंतिम वर्ष) / M.Sc. तथा दूसरा M. Tech./ Ph.D. के विद्यार्थियों के लिये। तत्पश्चात विचार हुआ कि भारतीय संस्कृति सम्बन्धित पाठ्यक्रम के अनुरूप पुस्तक हो तो विद्यार्थियों एवं अन्य पाठकों के लिये उपयोगी होगा क्योंकि तब वह पाठ्यक्रम के अधिकांश भाग को एक ही पुस्तक में देख सकेंगे। इसके पश्चात यदि उनकी रुचि हुई तो वे स्वयं परम्परागत प्रामाणिक ग्रंथों का अध्ययन कर सकते हैं जिन्हें समझने में अब उन्हें सरलता होगी। इसलिये इस पुस्तक का निर्माण किया गया।

6. प्रस्तुत पुस्तक क्यों पढ़ी जाए, किस प्रयोजन के लिए पढ़ी जाए ? – निम्न पंक्तियों में कई प्रश्न प्रस्तुत किये गए हैं। आप को इन प्रश्नों के उत्तर तथा उससे सम्बन्धित तथ्यों को जानने की जिज्ञासा यदि है और उन्हें एक ही ग्रन्थ में प्राप्त करना चाहते हैं तो प्रस्तुत पुस्तक का पढ़ना यथोचित व अनिवार्य है। कुशलता पूर्वक एवं श्रम से पढ़ी गयी बहुत–सी भौतिक विद्याएँ मनुष्य की अभिलाशाएँ या अपेक्षाएँ बदलने पर उनके लिये प्रायः अनावश्यक व विस्मृत हो जाया करती हैं। परंतु जो ज्ञान सदा आजीवन मनुष्य का साथ देता रहेगा, जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण

उपलब्ध कराएगा, वांछित संतोष प्रदान करेगा, स्वदेश के प्रति स्वाभिमान जगाएगा, वह उन विद्याओं में समाहित है जो निम्न प्रश्नों का उत्तर प्रदान करने में समर्थ हैं :

i) भारतीय संस्कृति समझना क्यों आवश्यक है? इससे क्या और किस प्रकार से लाभ होने वाला है?

ii) भारतीय संस्कृति समझना कठिन क्यों प्रतीत होने लगता है? उसे सरल कैसे किया जाए?

iii) संस्कृति, सभ्यता और धर्म में क्या अन्तर है?

iv) आधुनिक जीवन की मान्यताएँ क्या हैं और उसके दृष्टिकोण क्या हैं? उसके गुण और दोष क्या हैं?

v) आधुनिक जीवन की समस्याएँ क्या हैं? उनके मौलिक कारण क्या हैं? उनका समाधान कैसे संभव है?

vi) आधुनिकता से ग्रस्त युवक कुछ प्रश्न उठाते हैं, उन प्रश्नों का उत्तर क्या है?

vii) भारतीय संस्कृति का ''केन्द्र-बिन्दु'' कौन सा है? उसका दृष्टिकोण क्या है? भारतीय सस्कृति की विलक्षणताएँ क्या हैं?

viii) ''गुरु'' और ''विद्यार्थी'' शब्दों के क्या अर्थ हैं? गुरु और विद्यार्थी के क्या लक्षण होने चाहिए?

ix) विद्या क्या है और उसका उद्देश्य क्या है? वह कितने प्रकार की होती है? अविद्या क्या है?

x) ''दीक्षा'' क्या होती है और यह कितने प्रकार की होती है? दीक्षा की क्या आवश्यकता?

xi) आधुनिक और पुरातन शिक्षा पद्धतियों में क्या अन्तर है? यह भेद किसलिए है?

xii) क्या संसार में अदृष्ट सत्ताओं का अस्तित्व है? यदि है तो वे किस प्रकार की होती हैं और उनका महत्व क्या है?

xiii) पुनर्जन्म की अवधारणा क्या है? पुनर्जन्म में विश्वास करें या न करें? यदि करें तो क्यों करें और उससे क्या लाभ?

xiv) मनुष्य-जीवन के ध्येय क्या होने चाहिए और उन्हें किस आधार पर निश्चय करें? क्या वे बुद्धि द्वारा निश्चय किये जा सकते हैं?

xv) मनुष्य का सर्वोत्तम ध्येय क्या होना चाहिए? उस ध्येय का स्वरूप क्या है? उससे क्या लाभ और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

xvi) मनुष्य के ध्येयों की प्राप्ति के लिये सामाजिक विधि-विधान एवं कर्तव्य-कर्म क्या होने चाहिए? इन्हें कौन निश्चित करे?

xvii) हम किन-किन प्रकार के मनुष्यों या प्राणियों के ऋणी हैं? उनसे उऋण कैसे हुआ जाए?

xviii) बुद्धि की सीमाएँ (Limitations) क्या हैं? बुद्धि के दोष क्या हैं और उन दोषों का निवारण कैसे हो? ''बुद्धि'' शब्द के कितने पर्यायवाची हैं और उनके अर्थों में क्या भिन्नता है?

xix) ''प्रमाण'' किसे कहते हैं और ये कितने प्रकार के होते हैं? प्रमाणों की आवश्यकता क्यों?

xx) तर्क क्या हैं? क्या तर्कों पर विश्वास किया जा सकता है? कारण कितने प्रकार के होते हैं?

xxi) अन्तःकरण किसे कहते हैं? अन्तःकरण शुद्धि के उपाय क्या हैं और उससे क्या लाभ होगा?

xxii) मनुष्य का सूक्ष्म-शरीर क्या है और उसकी उपादेयता क्या है? स्थूल और सूक्ष्म-शरीरों को कैसे शुद्ध करें?

xxiii) शरीर के दो प्रमुख तत्व कौन से हैं? मनुष्य-शरीर में अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व कौन सा है और उसका स्वरूप क्या है?

xxiv) सुख-दुःख के तीन विस्तृत कारण कौन-कौन से हैं और वे किस प्रकार सुख-दुःख देते हैं? सुख-दुःख शरीर में किसे होता है और क्यों होता है?

xxv) क्या सुख-दुःख का होना स्वाभाविक है या अस्वाभाविक? क्या दुःख की निवृत्ति सदा के लिये संभव है?

xxvi) दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति या अखण्ड आनन्द कैसे प्राप्त हो?

xxvii) जन्म और मरण क्या हैं? इसकी प्रक्रिया क्या है? मानव शरीर कितने प्रकार से होते हैं?

xxviii) भारतीय संस्कृति में प्रकृति क्या है? प्रकृति का प्रयोजन क्या है और वह किस प्रकार कार्य करती है?

xxix) प्रकृति के साथ हमारा बन्धुत्व किस प्रकार स्थापित होता है? संस्कृत भाषा का शब्द ''प्रकृति'' और अंग्रजी भाषा का शब्द ''नेचर'' (Nature) में क्या अन्तर है?

xxx) मानवीय सद्‌गुण (Human Values) कौन-कौन से हैं? क्या उन्हें विद्यार्थियों को पढ़ा देना ही पर्याप्त है? वे सद्‌गुण जीवन में कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं?

xxxi) कर्म क्या है? कर्म का वर्गीकरण किस प्रकार से है? कर्म सिद्धान्त क्या है? कर्म की सीमाएँ क्या हैं? कर्म के परिणाम क्या हैं? कर्म की पराकाष्ठा क्या है?

xxxii) कोई वस्तु हमें किन कारणों से प्राप्त होती है? भाग्य (Luck) का स्वरूप क्या है? प्रारब्ध किसे कहते हैं?

xxxiii) ज्ञान (Knowledge) क्या है? ज्ञान कितने प्रकार के होते हैं? मस्तिष्क में ज्ञान प्राप्त होने की प्रक्रिया क्या है? ज्ञान की पराकाष्ठा क्या है?

xxxiv) विज्ञान और साइंस (Science) में क्या अन्तर है? संस्कृत भाषा के किसी शब्द के अर्थ का ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाता है?

xxxv) अज्ञान क्या है और क्यों है? वह कितने प्रकार का होता है? अज्ञान से निवृत्ति कैसे हो?

xxxvi) विद्यार्थी जीवन के बन्धन क्या हैं? मानवीय जीवन के बन्धन क्या हैं? बन्धनों से मुक्ति क्या संभव है? यदि है तो कैसे?

xxxvii) प्रेम क्या है? प्रेम की कितनी दशाएँ होती हैं? प्रेम और भक्ति में क्या अंतर है? भक्ति कितने प्रकार की होती है?

xxxviii) ''धर्म'' किसे कहते हैं? उसकी उपयोगिता क्या है? धर्म और रिलीजन (Religion) में क्या भेद है? राष्ट्रधर्म क्या है? धर्म-अधर्म निर्णय की प्रक्रिया क्या है?

xxxix) वर्णाश्रम व्यवस्था क्या है? उसकी उपादेयता है या नहीं? यदि है तो कैसे है और उसका महत्व क्या है?

xl) ''स्वास्थ्य'' शब्द की व्याख्या क्या है? उसे परिभाषित कैसे करें?

xli) स्वास्थ्य के साधक तत्व कौन-कौन से हैं? स्वास्थ्य के बाधक तत्व कौन-कौन से हैं?

xlii) क्या खाएँ और क्या न खाएँ? कैसे खाएँ? खाते समय किन-किन बातों का ध्यान रक्खें?

xliii) आहार (भोजन) का वर्गीकरण किस प्रकार से है? आहार का विस्तृत अर्थ क्या है?

xliv) योग किसे कहते हैं? योगासनों और आधुनिक व्यायामों में क्या अन्तर है? इस भेद के कारण क्या हैं?

xlv) ''ब्रह्मचर्य'' शब्द का अर्थ क्या है? उसकी क्या आवश्यकता और उसे कैसे धारण करें?

xlvi) प्राणायाम, उपासना और ध्यान की क्या आवश्यकता? ये प्रत्येक कितने-कितने प्रकार के होते हैं?

xlvii) संस्कार क्या हैं? वे कितने हैं और कैसे प्राप्त किये जाते हैं? संस्कारों से क्या लाभ?

xlviii) भारतीय संस्कृति की भाषाओं में क्या विशिष्ट गुण हैं? उनका स्वरूप वैज्ञानिक क्यों है? संस्कृत भाषा किन कारणों से सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है?

xlix) भारतीय संस्कृति के परंपरागत प्रामाणिक ग्रन्थ कौन-कौन से हैं और उनमें किस प्रकार के विषय हैं? उनमें क्या विशिष्टता है? दर्शन और फिलॉसफी (Philosophy) में क्या अंतर है? पुराण और इतिहास में क्या भेद है?

l) तीर्थ क्या होते हैं? प्रधान रूप से ये कितने प्रकार के हैं और ये कौन-कौन से हैं? तीर्थों की क्या आवश्यकता?

li) भारतीय संस्कृति के त्योहार क्या हैं और वे कौन-कौन से हैं? इन त्योहारों की क्या आवश्यकता है?

lii) भारतीय संस्कृति के विषय में विदेशी विद्वानों के क्या विचार हैं?

7. पुस्तक के विभिन्न विषयों का ज्ञान सहज एवं स्पष्ट बनाना – इस पुस्तक के विभिन्न विषयों को समझने में सरलता और स्पष्टता प्रदान करने के लिये निम्न उपायों को अपनाया गया है :

i) अध्यायों का क्रम स्पष्ट करना– इस पुस्तक के विभिन्न अध्याय किस लिये तथा किस क्रम से लगाये गये हैं, इसको प्रथम अध्याय के अन्त में बताया गया है।

ii) शब्द के अर्थ को पहले बताना– अधिकांश संदर्भों में उसके मूल्यवान शब्द के अर्थों को पहले समझाया गया है। विभिन्न विचारकों द्वारा जो अर्थ बताये गये हैं उनको प्रस्तुत किया है तथा साथ में शब्दकोश द्वारा बताये गये अर्थों का भी उल्लेख किया गया है। इससे शब्द के अर्थ को उसकी पूर्णता के साथ समझने में सहायता मिलती है। भारतीय संस्कृति समझने के लिये यह आवश्यक है।

iii) किसी विषय के सब भावों को एक स्थान पर बताना– भारतीय संस्कृति समझाने की एक प्रणाली है जो पहले से चली आ रही है और आज भी विद्यमान है। वह प्रणाली है कि व्यासजी (व्याख्याता) द्वारा किसी प्रामाणिक ग्रंथ को खोलकर बैठ जाना तथा उसके क्रमबद्ध श्लोकों (अथवा मंत्रों या सूत्रों) की उसी क्रम से सुन्दर व्याख्या करते जाना। इस प्रणाली से भारतीय संस्कृति का ''खिचड़ी-जैसा'' (अर्थात् मिला-जुला) ज्ञान होता है, किसी विषय-विशेष का ज्ञान अपनी पूर्णता के साथ नहीं हो पाता क्योंकि किसी एक विषय के विभिन्न रूपों के सब भाव हमारे शास्त्रों में एक स्थान पर नहीं होते, वह भिन्न-भिन्न स्थानों में बिखरे पड़े रहते हैं। हमनें किसी विषय-विशेष के सभी (या अधिकांश) भावों को एक जगह रखकर समझाया है। उदाहरण के लिये धर्म, प्रकृति, जीव, कर्म, ज्ञान, सुख-दुःख, आदि अनेक भावों के विभिन्न रूपों को हमने पृथक्-पृथक् एक जगह रखकर बताया है। इससे उस विषय के बारे में अधिक समझ के साथ ज्ञान होता है तथा उस विषय को अपनी पूर्णता के साथ समझने का अवसर मिलता है। हमारे देश में भारतीय संस्कृति समझाने की एक अन्य मधुर प्रणाली भी है और वह है कथाओं द्वारा। जनसाधारण को इसमें अधिक आनंद आता है और कथाएँ हितकारी भी होती हैं। परन्तु किसी विषय-विशेष के विभिन्न बिन्दुओं पर इससे अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। उदाहरण के लिये दान देने के लाभ पर अनेक मार्मिक कथाएँ हैं किन्तु कथा सुनकर यह जानकारी प्रायः नहीं हो पाती कि दान देने से चित्त की शुद्धि होती है। चित्त शुद्धि के अन्य उपाय भी हैं।

iv) प्रत्येक परिच्छेद का तात्पर्य संक्षिप्त में प्रथम पंक्ति में लिखना– प्रायः देखा जाता है कि कोई-कोई लेखक पाँच या दस पृष्ठ या इससे भी अधिक पृष्ठ लिख तो देते हैं किन्तु बीच-बीच में किसी प्रकार के शीर्षक प्रस्तुत नहीं करते। इससे पाठकों को कठिनाई यह हो जाती है कि उन्हें प्रायः यह शीघ्र समझ में नहीं आता कि लेखक अन्ततोगत्वा कहना क्या चाहता है, उसके विचार के केन्द्र-बिन्दु कौन-कौन से हैं। इस पुस्तक के लगभग प्रत्येक परिच्छेद (Paragraph) की पहली पंक्ति में उस परिच्छेद का साररूप वाक्य या शीर्षक कुछ मोटे अक्षरों से लिखने का प्रयत्न किया गया है, जैसा कि पुस्तक के इसी ''प्राक्कथन'' नामक खण्ड में भी हुआ हैं। आशा है इससे पाठकों के लिये विविध संदर्भों को समझने में सरलता होगी और प्रत्येक विषय में कौन-कौन से कितने ''बिन्दु'' (Points) हैं, उन्हें याद रखने में भी आसानी होगी।

v) **रेखांकित सारिणी द्वारा समझाना–** इस पुस्तक में किसी-किसी विषय को, जिसके विभिन्न अन्य भाग भी होते हैं, उन्हें भाषा द्वारा व्यक्त करने के अतिरिक्त रेखांकित सारणी द्वारा भी बताने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रक्रिया से यह स्पष्ट समझ में आता है कि कौन सा बिन्दु किस विषय के अन्तर्गत आता है।

vi) **कठिन शब्द के अर्थ लिखना–** सांस्कृतिक साहित्य में कठिन शब्दों का प्रयोग भी प्रचलित है जिन्हें समझना जनसाधारण के लिये मुश्किल हो जाता है। अधिकांशतः यह शब्द संस्कृत भाषा के होते हैं। यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है जब कुछ विद्वानों के वाक्यों को उन्हीं की भाषा में लिखा जाता है। इस कठिनाई को कम करने के लिये हमने कोष्ठक (Bracket) के अन्दर समानार्थक सरल शब्दों को भी कहीं-कहीं लिख दिया है। भावों को भी ''सीधा-सीधा'' व्यक्त किया गया है जिससे पाठकों को समझने में कुछ सरलता हो सकती है।

vii) **शीर्षक के विभिन्न उप-शीर्षकों को स्पष्टरूप से व्यक्त करना–** प्रायः एक मुख्य शीर्षक के उप-शीर्षक, उप-उप शीर्षक, उप-उप-उप शीर्षक, इत्यादि भी होते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट करने के लिये कि कौन सा शीर्षक किस शीर्षक का अंग है, इसके लिए प्रत्येक शीर्षक को संख्या प्रदान की गयी है और संख्याओं के लिखने के ढंग का आश्रय लिया गया है। यह विधि प्रस्तुत पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में समान रूप से प्रयुक्त है, इसलिये इसे यहाँ अध्याय 8 का उदाहरण देकर बताया जाता है-

(क) अध्याय 8 के उपशीर्षकों को 8.1, 8.2, 8.3 आदि खण्डों (चिन्हों) द्वारा व्यक्त किया गया है।

(ख) यदि खण्ड 8.1 के उपशीर्षक हैं तो उनको 8.1-1, 8.1-2, 8.1-3, आदि खण्डों द्वारा व्यक्त किया गया है, इसी प्रकार 8.2, 8.3, आदि खण्डों के उपशीर्षकों को व्यक्त किया गया है।

(ग) यदि खण्ड 8.1-1 के भी उपशीर्षक है तो उनको 1, 2, 3, आदि संख्याओं द्वारा व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार 8.1-2, 8.1-3, आदि खण्डों के उपशीर्षकों को संख्याओं द्वारा व्यक्त किया गया है।

(घ) यदि संख्या 1. के भी उप-शीर्षक हैं तो उन्हें i), ii), iii), आदि रोमन अंकों (Roman Numerals) द्वारा व्यक्त किया गया है और उन्हें बायें हाथ की तरफ अधिक हाशिया (Margin) देकर लिखा गया है। इसी प्रकार संख्या 2, 3, आदि के उपशीर्षकों को व्यक्त किया गया है।

(ङ॰) यदि i) के भी उपशीर्षक हैं तो उन्हें 1), 2), 3), आदि द्वारा व्यक्त किया गया है और उन्हें बायें हाथ की तरफ अधिक हाशिया देकर लिखा गया है। इसी प्रकार ii), iii), आदि के उपशीर्षकों को व्यक्त किया गया है।

(च) यदि 1) के भी उपशीर्षक हैं तो उन्हें (1), (2), (3), आदि द्वारा व्यक्त किया गया है और उन्हें बायें हाथ की तरफ अधिक हाशिया देकर लिखा गया है। इसी प्रकार 2), 3), आदि के उपशीर्षकों को व्यक्त किया गया है।

(छ) यदि (1) के भी उपशीर्षक हैं तो उन्हें (i), (ii), (iii), आदि द्वारा व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार (2), (3), आदि के उपशीर्षकों को व्यक्त किया गया है।

8. लेखन कार्य की अंतर्निहित बाध्यताएँ – पुस्तक के लेखन कार्य में प्रायः कुछ बाध्यताएँ समाविष्ट होती हैं जिनसे अवगत कराना यहाँ असंगत न होगा। यह इस प्रकार हैं :

i) **अप्राप्त ग्रंथों के संदर्भों की विश्वसनीयता–** लेखक को प्राप्त पुस्तकों से कुछ अप्राप्त पुस्तकों के संदर्भ (Reference) ज्ञात होते हैं। ऐसे संदर्भों की पुष्टि कर पाना लेखक के लिये प्रायः कठिन भी हो जाता है। सौभाग्यवश प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे संदर्भों की संख्या जिनकी पुष्टि नहीं हो पायी अधिक नहीं हैं।

ii) **कुछ बिन्दुओं पर स्पष्टता का अभाव–** शास्त्रों के पढ़ने पर तथा विद्वानों से चर्चा किये जाने पर भी किसी विषय का कोई-कोई बिन्दु ऐसा होता है जिसकी स्पष्टता संदिग्ध बनी

रहती है। ऐसे बिन्दु के विषय में लेखक का अधिक स्पष्ट हो पाना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिये शास्त्रों में विभिन्न लोकों की चर्चा हुई है किन्तु इन लाकों के स्वरूप के विषय में यथेष्ट स्पष्टता हमें नहीं मिल पायी।

iii) **विद्वानों की उपाधियाँ प्रत्येक स्थल पर न लिखना–** विद्वान महानुभावों की प्रायः अनेक उपाधियाँ होती हैं जो उनके नामों के आगे-पीछे लगायी जाती हैं। यह परम्परा उचित भी है और आदर के योग्य है। परन्तु जब उन महानुभावों के नाम पुस्तक में कई बार उद्धरित होते हैं तब उन उपाधियों का बार-बार उद्धरित करना अव्यावहारिक-सा हो जाता है। इसलिये हमने प्रस्तुत पुस्तक के विभिन्न स्थलों पर उन महानुभावों की उपाधियों को नहीं लिखा है। इसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में कोई-कोई संत के लिये कहीं पर ''स्वामी'' और कहीं पर ''श्री'' उपाधि का प्रयोग हुआ है, इसका कोई विशेष कारण नहीं है।

iv) **ग्रंथों के नामों का उद्धरण पूर्णरूप से न होना–** विभिन्न पुस्तकों के नाम लेखन कार्य में बार-बार आते हैं। कुछ पुस्तकों के नामों को कभी-कभी संक्षिप्त शब्दों में लिखा गया है। जैसे ''श्रीमद्भगवद्गीता'' को केवल ''गीता'' लिखा गया है, या ''श्रीमद्भगवद्गीता, साधक-संजीवनी, हिन्दी टीका, स्वामी रामसुखदास'' की जगह केवल ''गीता, श्री रामसुखदास'' लिख दिया गया है।

v) **त्रुटियों का समावेश हो जाना–** लेखन कार्य प्रारम्भ करने से लेकर पुस्तक छपकर तैयार होने तक के समस्त कार्य को विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है तथा लेखक को अन्य व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करना होता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं पुस्तक का हाथ से लिखना, टाइप होना, बीच-बीच में संशोधन, प्रूफ रीडिंग (छपने से पहले पढ़ा जाना), छापा जाना, पृष्ठों का क्रमपूर्वक लगना, इत्यादि। इस समस्त प्रक्रिया के विभिन्न अंशों पर बहुत ध्यान रखते हुए भी कुछ-न-कुछ त्रुटियाँ रह जाना आश्चर्यजनक नहीं है। कुछ त्रुटियाँ कम्प्यूटर-जन्य होती हैं जिनसे साधारणतया लोग परिचित होते हैं। इसके अतिरिक्त एक तथ्य यह भी है कि मुझ जैसे लेखक का भाषा पर यथेष्ट अधिकार न होने के कारण तथा संक्षेप में लिखने का अभ्यास होने से भावों को प्रगट करने में प्रवाहमय मधुरता का लोप-सा हो जाता है। अन्ततोगत्वा मैं यही कहूँगा कि इस पुस्तक में यदि किसी प्रकार की त्रुटि पायी जाती है तो वह मेरी ही शिथिलता, भूल, या नासमझी होगी।

9. आभार स्वीकारोक्ति – सर्वप्रथम हम परमपिता परमात्मा को प्रणाम करते हैं, जिनकी कृपा से मुझे प्रस्तुत पुस्तक के लेखन की प्रेरणा जाग्रत हुई तथा वे घटनाएँ भी घटित होती रहीं जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में प्रमुख भूमिकाएँ निभायीं। भारतीय संस्कृति अवतारों, ऋषियों, संतों, महात्माओं द्वारा अभिव्यक्त की गयी है, रची गयी है, सृजित की गयी है तथा प्रसारित हुई है। प्रत्येक युग में अनेक संतों तथा महात्माओं ने इस कार्य में योगदान दिया है। आधुनिक युग में भी ऐसे संतों, महात्मओं एवं विद्वानों की कमी नहीं रही, जिन्होनें अपना सम्पूर्ण जीवन विभिन्न प्रकार से भारतीय संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में लगाया। इन्हीं संतों एवं महात्माओं के विचारों को प्रसंगानुसार संकलित करके यहाँ लेखक ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। लेखक ने स्वयं कोई विचार बनाने का प्रयत्न नहीं किया और यदि किन्हीं स्थलों पर ऐसा हुआ भी है तो वहाँ पर ''लेखक'' शब्द प्रायः लिख दिया गया है। ऋषियों, संतों एवं महात्माओं के विचार जगह-जगह पर इस पुस्तक में बिखरे पड़े हैं। उनके नामों एवं कृतियों का उल्लेख भी कर दिया गया है किन्तु सभी स्थलों पर ऐसा नहीं हुआ है। इन सभी संतों, महात्माओं एवं विद्वानों का आभार मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ। हम विशेषरूप से स्वामी विश्वात्मानन्द पुरी जी महाराज (अध्यक्ष, साधना-सदन, कनखल, हरिद्वार) के आभारी हैं जिन्होंने बड़े ही स्नेह व विद्वतापूर्वक हमारी वेदांत सम्बंधि शंकाओं के निवारण किया। हम विशुद्धानन्द गिरि (अद्वैतसिद्धि के ऊपर सत्यानन्द प्रबोधिका और कैलास विद्याप्रकाशिका नामक टीका के लेखक) के भी आभारी हैं जिन्होनें हमारी कुछ शंकाओं के निवारण हेतु अपना अमूल्य समय हमें दिया।

लेखन कार्य समाप्त होने से पहले ही उसे टाइप करवाने का विचार मन में आने लगता है। यह हमारे लिये प्रसन्नता की बात है कि मेरी बेटी डॉ. रश्मि शर्मा तथा उसके पतिदेव श्री राजीव शर्मा ने इस सम्पूर्ण कृति को टाइप करवाने का दायित्व लेने का प्रस्ताव रखा। मैं इन दोनों का बहुत आभारी हूँ जिन्होंने सम्पूर्ण हस्तलिखित पुस्तक को कम्प्यूटर पर टाइप कराने तथा आदेशानुसार उसे बार-बार संशोधित करने के कष्टसाध्य कार्य का प्रेमपूर्वक निर्वाह किया। टाइप होने के कार्य में श्री अरुण परदेसी के योगदान के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिससे कार्य पूर्ण होने में सहायता मिली। मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती ऊषा ओझा का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरी व्यस्तता के क्षणों में अन्य प्रकार की चिन्ताओं से मुझे मुक्त रखा।

किसी भी लेखन कार्य की पूर्णता का एक महत्वपूर्ण अंश उसका छापा जाना होता है। पुस्तक का प्रथम संस्करण जिसका शीर्षक ''आधुनिक परिवेष में भारतीय संस्कृति'' था उसे खेमराज श्रीकृष्णदास (मुम्बई) ने छापा था। पुस्तक के प्रथम संस्करण का संशोधन कर पुस्तक का शीर्षक ''भारतीय संस्कृति की महानता और विलक्षणता'' लिखा गया था जिसे प्रतिभा प्रकाशन (दिल्ली) ने सन् 2011 में छापा था।

वर्ष 2017 के संस्करण हेतु सम्पूर्ण पुस्तक का पुनरावलोकन कर उसके कुछ परिच्छेदों का अनुपूरण व संवर्द्धन किया गया है तथा पुस्तक के शीर्षक का भी संशोधन हुआ है। पुस्तक के प्रकाशक भी भिन्न हैं। प्रकाशक का कार्य लेखक ने स्वयं ग्रहण किया है। पुस्तक के अंत में आवरण पृष्ठ पर जिन सभी हमारी भारत में छपी पुस्तकों का उल्लेख है उन सभी के अब नवीन संस्करणों के प्रकाशक स्वयं लेखक हैं।

****